ॐ भारदाय नमः

# चतुर्थो अध्यायः

## श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद

# 'ज्ञान कर्म संन्यास'

## अध्याय

**दोहा- देख रहे थे देव सब, दमक रहा था व्योम।**
**देवों का अतिथ्य कर अति हर्षित थे सोम॥**

**अर्जुन को समझा रहे प्रभु गीता का योग**
**श्रवण सुलभ किसको हुआ गीता का संयोग॥**

मुझसे सुनकर सूर्य ने मनु से कहा वृतान्त है।
मनु से इक्ष्वाकु जाने कर्म का सिद्धांत है॥ 01

राज ऋषियों में चला बहु काल तक संज्ञान है।
काल की कैसी कला कवलित किया यह ज्ञान है॥ 02

चूंकि अर्जुन भक्त मेरा मित्रवत् अनुरक्त है।
प्रकट करता पुनः तुझसे यह अलौकिक तथ्य है॥ 03

किन्तु केशव आपका तो जन्म अर्वाचीन है।
और दिवाकर कल्प से भी पूर्व है प्राचीन है॥ 04

यह तो निःसन्देह है प्रभु का न मिथ्या कथ्य है।
किन्तु प्रज्ञा से परे अनुपम अलौकिक तथ्य है॥ 05

जो नहीं सुलझा है विधि से आज तक वह प्रश्न हूँ।
हँस के बोले भुवन मोहन पार्थ सुन मैं कृष्ण हूँ॥ 06

मृत्यु कर देती विसर्जित जीव का सब ज्ञान है।
योग बल से किन्तु मुझको हर जनम का ध्यान है।। 07

मैं अजन्मा, अविकारी, अविनाशी मुक्त हूँ।
भूत भूतेश्वर प्रकृति में योग माया युक्त हूँ।। 08

धर्म विस्मृत, स्वार्थ साधक, भोगरत संसार हो।
धर्म पालक, नीतिरत संग आसुरी व्यवहार हो।। 09

सिद्ध, साधक, ब्राह्मण, गौ सबमें हा हा कार हो।
धर्म रक्षा हेतु जग में, तब मेरा अवतार हो।। 10

धर्म की एक डोर से बांधा गया त्रैलोक है।
होते ही आघात इस पर, डोलता हर लोक है।। 11

जिस किसी युग में भी बढ़ता, पाप का प्रारूप है।
अवतरित होता हूँ मेरा धर्म रक्षक रूप है।। 12

सिद्ध, साधक, साधुओं को, मैं ही देता त्राण हूँ।
दुष्ट राक्षस, पापियों के स्वयं हर्ता प्राण हूँ।। 13

तभी तक रहता हूँ भू पर जब तलक सुरकाज हो।
पापियों का नाश होकर धर्म का साम्राज्य हो।। 14

जन्म मेरा है अलौकिक, कर्म मेरा दिव्य है।
जानता जो तत्व से, पाता मेरा सान्निध्य है।। 15

हो गये सब नष्ट जिसके, राग, भय और क्रोध हैं।
पा गये वे लोक मेरा, जिनको सम्यक बोध है।। 16

भाव का भूखा हूँ अर्जुन, मित्र का प्रिय मित्र हूँ।
यदि पिता का भाव निश्छल, तो मैं उसका पुत्र हूँ।। 17

जो भजे जिस भाव में, उससे मेरा सम्भाव है।
देव विग्रह सब मेरे ही, रूप मेरी छांव है।। 18

कर्म के फल हेतु करते, देव पूजन लोग हैं।
अस्तु हो आसक्त पाते, सिद्धि फल का योग है।। 19

चार वर्णों से रची भूलोक की यह नींव है।
सत्व, रज और तम गुणों वश, जन्म लेता जीव है।। 20

स्वयं ही कर्ता सदा फिर भी अकर्ता मित्र हूँ।
कर्म, गुण और भाव के रचता ये छाया चित्र हूँ।। 21

इस तरह कर्ता हूँ लेकिन फल न मुझसे लिप्त है।
जानता जो तत्व से होता न फिर संलिप्त है।। 22

सब मुमुक्षु करते आये, पूर्व से सत्कर्म हैं।
उठ धनंजय कर्म कर, बस कर्म से सब धर्म हैं।। 23

अब सुभद्रा कान्त सुन क्या कर्म है या अकर्म है।
तत्व से कहता तुझे क्या धर्म है या अधर्म है।। 24

कर्म के सब रूप सुन व अकर्म का भी बोध कर।
और इनके मध्य में है विकर्म यह भी शोध कर।। 25

बुद्धिजीवी कर्म करता, जानकर ये अकर्म है।
किन्तु यदि अकर्म है, तब भी तो अर्जुन कर्म है।। 26

है वही पंडित व ज्ञानी, सिद्ध व समर्थ है।
कामना संकल्प तज जो कर्म से आबद्ध है।। 27

है निराश्रित लोक से, परलोक का आश्रय नहीं।
ब्रह्म, आनन्दी अकर्मी है सदा संशय नहीं।। 28

मन व इन्द्रिय से नहीं जिसको कोई अनुताप है।
निराश्रित उस जीव का हर कर्म भी निष्पाप है।। 29

जो सदा अनुकूल रहता, जानकर प्रारब्ध है।
कर्म में समभाव जीवी भी नहीं आवद्ध है।। 30

मुक्त संगी, ज्ञान स्थित चित्त है, मूर्धन्य है।
यज्ञ कर्मी जीव के होते तिरोहित कर्म हैं।। 31

ब्रह्मरूपी श्रुवा यदि हवि ब्रह्म दे मुख ब्रह्म को।
ब्रह्म कर्ता और क्रिया से फल भी पावे ब्रह्म को।। 32

यज्ञ करना या कराना ब्रह्म साधक जानते।
किन्तु योगी सिद्ध ही इस तत्व को पहचानते।। 33

शास्त्र विधि से देव आवाहन व पूजन यज्ञ है।
आत्म हवि परमात्म अग्नि में हवन भी यज्ञ है।। 34

इन्द्रियाँ संयम की हवि हों, यज्ञ की ही है क्रिया।
विषय हवि हों इन्द्रियों के भी हवन की प्रक्रिया।। 35

या क्रिया और प्रक्रिया सब ज्ञान में हवि दान दे।
आत्म संयम योग रूपी यज्ञ को स्थान दे।। 36

प्राण हवि हों अपान में या अपान हवि हो प्राण में।
यज्ञ है यदि प्राण ही बन जाये जब हवि प्राण में।। 37

यज्ञ की विधियाँ अनेकों हैं, धनंजय जान ले।
ॐ बीजक मंत्र है, इस तथ्य को पहिचान ले।। 38

यज्ञ का अवशिष्ट था, परमात्म सुख को प्राप्त हो।
यदि विमुख इस मार्ग से, संसार दुःख ही व्याप्त हो।। 39

ये सभी भौतिक क्रियायें, यज्ञ का आधार हैं।
ज्ञान अग्नि को समर्पित यज्ञ सबका सार है।। 40

तत्वदर्शी, सिद्ध, साधक ज्ञान के भण्डार हैं।
निष्कपट सेवा से पाना, ही सरल आधार हैं।। 41

फिर असम्भव है कि तुझको मोह संघर्षण करे।
सच्चिदानन्द ब्रह्म में संसार का दर्शन करे।। 42

कैसा भी पापी, किया भी कैसा पापाचार हो।
ज्ञान नौका से यहाँ हर पाप जल निधि पार हो।। 43

अग्नि लौ में जिस तरह हर तत्व होता ध्वंस है।
इस तरह ज्ञानाग्नि करती कर्म गति को भस्म है।। 44

ज्ञान की गंगा प्रवाहित, हर दिशा हर काल में।
आचमन कर जीव फिर फंसता नहीं भवजाल में।। 45

ब्रह्म सत्ता, वेद, ईश्वर, शास्त्र में विश्वास हो।
वह जितेन्द्रिय कर्म योगी ज्ञान का आवास हो।। 46

अज्ञ, श्रद्धा विरत, संशय युक्त, मोहाधीन है।
लोक या परलोक दोनों के सुखों से हीन है।। 47

योग से सब कर्म संशय ज्ञान से यदि छिन्न हों।
आत्मवत जीवन्त प्राणी बन्धनों से भिन्न हों।। 48

अज्ञता, संशय हृदय का ज्ञान से अवरुद्ध कर।
योग स्थित हो के भारत धर्म के हित युद्ध कर।। 49

**दोहा- लगे बरसने व्योम से, प्रभु पर पुष्पाहार।**
**हर्षित थे सब देवगण, हुआ ज्ञान संचार।।**

**नौका हो यदि ज्ञान की कर्म की हो पतवार।**
**योग खिवइया हो अटल होता भवनिधि पार।।**

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद ज्ञान कर्म संन्यास योग
चतुर्थ अध्याय समाप्त